नदियों को जोड़ना - एक विनाशकारी मरीचिका

प्रशांत भूषण

कहते हैं जवाहर लाल नेहरू ने बड़े बांधों को 'आधुनिक भारत के मंदिर' कहा था। मगर जल्दी ही उन्होंने यह भी कहा था: "कुछ समय से मैं यह सोचना लगा हूं कि हम 'विशालता के रोग' से ग्रस्त हैं। हम दिखाना चाहते हैं कि हम बड़े बांध बना सकते हैं और बड़े काम कर सकते हैं। भारत में यह एक खतरनाक दृष्टिकोण पनप रहा है। ...हमें यह भी समझना चाहिए कि हम छोटी-छोटी योजनाओं की मदद से अपनी समस्याओं को जल्दी व कार्यक्षम ढंग से सुलझा सकते हैं...

एक राक्षसी परियोजना को गुपचुप ढंग से राष्ट्रीय एजेण्डा में सबसे महत्वपूर्ण परियोजना दर्शाने की कोशिशें चल रही हैं। एक वर्ष पहले तक इस परियोजना पर कोई नज़र तक डालने को तैयार नहीं था और यह बात विवाद से परे है कि यह विनाश को न्योता साबित होगी। मैं नदियों को जोड़ने की परियोजना की बात कर रहा हूं।

इससे पहले साठ के दशक में के.एल. राव ने गंगा-कावेरी लिंक का प्रस्ताव रखा था और कैप्टन दिनशॉ दस्तूर ने गारलैण्ड कैनाल का विचार प्रस्तुत किया था। इन दोनों की गहन छानबीन के बाद इन्हें अव्यावहारिक पाया गया था। गंगा-कावेरी लिंक के बारे में स्पष्ट था कि इसकी वित्तीय लागत बहुत ज़्यादा है और इसमें ऊर्जा की खपत भी बहुत होगी। गारलैण्ड कैनाल तकनीकी रूप से अनुपयुक्त पाई गई थी। उस समय से आज तक पर्यावरण व इकॉलॉजी सम्बंधी मुद्दों की समझ बढ़ी है और यह स्पष्ट हुआ है कि बड़े बांधों की वजह से पर्यावरण व इकॉलॉजी दोनों ही प्रभावित होते हैं। जंगल व कृषि भूमि का डूबना, जैव विविधता की हानि, नदी की संरचना और पानी की क्वालिटी में परिवर्तन, जीव-जंतुओं के प्राकृत वासों का विनाश, दलदलीकरण और लवणीयता, बांध के नीचे जल प्रवाह में कमी, समुद्र में मीठा पानी पहुंचने में कमी और सागर संगम के जीवों पर इसके प्रतिकूल प्रभाव आदि कुछ महत्वपूर्ण चिंताएं इस संदर्भ में सामने आई हैं।

इस तरह की परियोजनाओं के विस्थापितों के तमाम आंदोलनों ने व्यापक अन्याय की बात को भी उजागर किया है। इन बांधों के कारण ये लोग उजड़ते हैं, बेघर हो जाते हैं, अपनी जड़ें गंवा देते हैं। इसी के साथ यह समझ भी बढ़ी है कि वर्षा जल दोहन या सूक्ष्म वॉटरशेड विकास के ज़रिए पानी का दोहन कहीं अधिक गति से और किफायती ढंग से संभव है।

हाल ही में विश्व बैंक ने कई अन्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ मिलकर एक विश्व बांध आयोग का गठन किया था। आयोग ने दुनिया भर के बड़े बांधों व सिंचाई परियोजनाओं के प्रभावों का अध्ययन किया। इस आयोग में पर्यावरण व सामाजिक संगठनों के नुमाइंदों के अलावा बांध निर्माता उद्योगों के प्रतिनिधि भी शामिल थे। आयोग ने एकमत से अपनी रिपोर्ट जारी की जिसमें कहा गया है कि बड़े बांधों की लागतें प्रायः कम करके बताई गई हैं जबकि लाभ बढ़ा-चढ़ाकर गिनाए गए हैं। लाभ-लागत के विश्लेषण में इन बांधों के पर्यावरणीय व सामाजिक असर को तो शामिल ही नहीं किया गया है। आयोग ने भारत के बांधों का एक विशेष अध्ययन भी करवाया था। यह अध्ययन देश के सर्वोत्तम विशेषज्ञों ने किया था। इस अध्ययन का निष्कर्ष था: "ज़ाहिर है कि अतीत में निर्मित परियोजनाओं का पर्यावरण, सामाजिक व आर्थिक आकलन ही नहीं किया गया है और न ही उनकी यथेष्टता को आंका गया है। यह भी दिखता है कि बड़े बांधों की लागतों और लाभों का बंटवारा इस तरह होता है कि सामाजिक-आर्थिक विषमता बढ़ती है।"

इस सबके बावजूद सरकार में उच्च स्तर पर एक कोशिश चल रही है कि येन केन प्रकारेण 'नदी-जोड़ो'

परियोजना को राष्ट्रीय एजेण्डा पर अंकित कर दिया जाए। पिछले वर्ष स्वतंत्रता दिवस पर राष्ट्रपति के अभिभाषण में इस आशय का एक पैरा जोड़ा गया कि नदियों को जोड़कर देश में बाढ़ व सूखे की समस्या से निपटना संभव होगा। इस पैरा के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय के एक वकील ने फौरन एक आवेदन किया कि अदालत सरकार को निर्देश दे कि वह इस परियोजना पर काम शुरू करे। ये वकील यमुना प्रदूषण के मुकदमे में अदालत के सहायक (एमिकस क्यूरी) हैं। जैसे स्वचालित ढंग से, मुख्य न्यायाधीश बी.एन. कृपाल ने राज्यों व केंद्र को नोटिस जारी कर दिए। और अगली सुनवाई पर एक आदेश पारित कर दिया गया - अब सरकार इस आदेश को यूं मान रही है जैसे यह परियोजना शुरू करने के लिए अदालत का आदेश हो। अदालत ने अपने आदेश में कम से कम समय में परियोजना पूरी करने की भी बात कही है।

आदेश में कहा गया है कि अदालत द्वारा जारी नोटिस के जवाब में मात्र तमिलनाडु और केंद्र सरकार ने जवाब पेश किए हैं। यह भी कहा गया है कि केंद्र सरकार ने अपने जवाब में कहा था कि इस परियोजना की लागत 5,60,000 करोड़ रुपए होगी और इसमें 43 वर्ष का समय लगेगा। तमिलनाडु राज्य द्वारा दिए गए जवाब में लगभग कुछ नहीं कहा गया था। केंद्र सरकार ने यह भी कहा था कि इस परियोजना के लिए राज्यों की सहमति अनिवार्य होगी। अदालत की टिप्पणी थी कि चूंकि किसी अन्य राज्य ने जवाब पेश नहीं किया है इसलिए यह माना जा सकता है कि उन्हें कोई आपत्ति नहीं है! अदालत ने मौखिक रूप से यह भी टिप्पणी दी कि राष्ट्र हित की किसी परियोजना के लिए धन आड़े नहीं आना चाहिए। अपने आदेश में अदालत ने कहा कि परियोजना 10 वर्षों में पूरी हो जानी चाहिए! और यदि राज्य इस परियोजना को मंज़ूरी नहीं देते तो केंद्र सरकार एक कानून बनाकर उनकी सहमति की अनिवार्यता को समाप्त कर सकती है।

यह सब एक ऐसी परियोजना के लिए जो अगले 44 वर्षों तक देश का पूरा सिंचाई बजट लील जाएगी। और यह आदेश पारित करने से पहले सभी सम्बंधित पक्षों की तो क्या, राज्यों की बात सुनने की भी प्रतीक्षा नहीं की गई। इस पर कोई बहस चर्चा नहीं हुई है, परियोजना की व्यावहारिकता का कोई अध्ययन नहीं हुआ है, सामाजिक पर्यावरणीय व आर्थिक प्रभावों का कोई आकलन तक नहीं हुआ है। इतनी लापरवाही के साथ इस देश को एक ऐसे रास्ते पर धकेला जा रहा है जिसके वित्तीय, सामाजिक व पर्यावरणीय नतीजे अभूतपूर्व होंगे।

और सरकार को तो जैसे इस अदालती फरमान की प्रतीक्षा ही थी। आदेश पारित होते ही इस परियोजना को राष्ट्रीय एजेण्डा पर स्थापित करने की कवायद शुरू हो गई। बताया जाने लगा कि यह अदालत द्वारा आदेशित परियोजना है। आनन फानन में टास्क फोर्स का गठन कर दिया गया। इसमें मात्र सिविल इंजीनियर्स और जल संसाधन मंत्रालय के अधिकारी शामिल हैं। टास्क फोर्स को यह काम दिया गया है कि इस परियोजना के क्रियान्वयन की एक विस्तृत योजना बनाए। टास्क फोर्स ने अपना काम इस फुर्ती से किया है कि उसने हाल ही में अदालत में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में कह दिया है कि इसी वर्ष कम से कम एक या दो नदियों को जोड़ने का काम शुरू हो जाएगा। यानी विस्तृत परियोजना रिपोर्ट तो दूर, परियोजना की व्यावहारिकता का अध्ययन तक किए बगैर ही यह काम शुरू करने के मंसूबे हैं। कोशिश यह चल रही लगती है कि इस परियोजना के लाभ-हानि पर किसी गंभीर बहस के बगैर ही इसे 'सम्पन्न कार्य' (*फैट एकंप्ली*) की श्रेणी में रख दिया जाए।

यह मानकर चला जा रहा है कि ऐसी परियोजना के लिए नियोजन की जो अनिवार्य प्रक्रिया होती है उसे बाइपास कर दिया जाएगा। जैसे पर्यावरण सम्बंधी मंजूरी वगैरह को यह कहकर चकमा दिया जाएगा कि यह तो अदालत का आदेश है और यह परियोजना राष्ट्रीय महत्व में सर्वोपरि है। यह विज्ञापन किया जा रहा है कि यह परियोजना देश की जीवन रेखा है, जैसे सरदार सरोवर गुजरात की जीवन रेखा है। आजकल की सरकारें मीडिया के ज़रिए आसानी से मरीचिकाएं और सफेद झूठ

बेचने की क्षमता रखती हैं (ज़रा याद कीजिए कि कैसे यू.एस. सरकार ने 'आतंकवाद के खिलाफ़ जंग' अपने देश में बेची थी, जो आज प्रजातंत्र पर सबसे बड़ा खतरा बनकर उभरी है।)

यह समझने के लिए किसी गहन तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता नहीं है कि नदियों को आपस में जोड़ना एक बेतुका विचार है और यह विनाश को बुलावा होगा। दूर-दूर से पानी आयात करने से पहले हमें उस पानी के बारे में सोचना चाहिए जो हमारे सिर पर, छतों पर गिरता है। यह अनुमान लगाया गया है कि कहीं दूर किसी बड़े बांध में पानी इकट्ठा करके उसे नहरों से ढोने की अपेक्षा स्थानीय वर्षा जल दोहन की लागत मात्र 20 प्रतिशत होती है। लिहाज़ा अपने इलाके के वर्षा जल को बचाकर उसका उपयोग न करके दूर-दूर से पानी लाने की बात असंगत है।

इसके अलावा इतनी विशाल परियोजना के कारण ज़बरदस्त सामाजिक व पर्यावरणीय उथल-पुथल होगी और राज्यों के बीच गंभीर विवाद उत्पन्न होंगे। कावेरी विवाद में मात्र तीन राज्य हैं। यदि इसमें पानी के बंटवारे से सम्बंधित समस्याओं को देखें, तो कल्पना की जा सकती है कि इतने राज्यों और इतनी नदियों का विवाद किस स्तर का होगा। और पूरी परियोजना एक प्रशासनिक दुःस्वप्न तो होगी ही।

इन बुनियादी मुद्दों के बावजूद केंद्र सरकार एक ऐसी परियोजना को आगे बढ़ाना चाहती है जिसके लिए देश के अगले 44 वर्षों के पूरे सिंचाई बजट की आवश्यकता होगी। इस संदर्भ में गौरतलब है कि हम अपनी अधूरी पड़ी परियोजनाओं को पूरा करने के लिए आवश्यक 1 लाख करोड़ रुपए नहीं जुटा पा रहे हैं। न तो हम मौजूदा सिंचाई क्षमता का पूरा उपयोग कर पा रहे हैं, और न ही वर्षा जल का।

नदी-जोड़ो परियोजना के उत्साह को समझना मुश्किल नहीं है। 5,60,000 करोड़ रुपए जब केंद्रीकृत ढंग से खर्च होंगे तो भ्रष्टाचार 10 प्रतिशत तो होगा। यह 10 प्रतिशत 56,000 करोड़ होता है। यदि इसे 20 वर्ष की अवधि में बांटें तो यह 2800 करोड़ प्रति वर्ष होता है। इसके विपरीत यदि देश के करीब 10 लाख गांवों को 10-10 लाख रुपए वर्षा जल दोहन के लिए दिए जाएं तो राजस्थान में तरुण भारत संघ द्वारा किए गए काम की तर्ज़ पर काम हो सकता है। इसका कुल खर्च 1 लाख करोड़ रुपए होगा। यानी नदी-जोड़ो का मात्र 20 प्रतिशत। और यदि हम प्रत्येक गांव को धन व तकनीकी ज्ञान उपलब्ध करा सकें तो वर्षा जल दोहन की इस परियोजना को 2 साल में पूरा किया जा सकता है। मगर इतने विकेंद्रित काम में 10 प्रतिशत 'किकबैक' थोड़ा मुश्किल है। इसीलिए केंद्रीकृत परियोजनाओं को तरजीह मिलती है।

अब तक सरदार सरोवर पर 14,000 करोड़ रुपए खर्च हो चुके हैं। यदि यही पैसा गुजरात में वर्षा जल दोहन पर खर्च किया जाता तो गुजरात कब का सूखा-प्रूफ हो जाता। मगर सरदार सरोवर को शुरू हुए 24 साल बीत गए हैं और अभी यह पूरा होता नहीं दिखता। शायद अभी 25 वर्ष और 30,000 करोड़ रुपए और लगेंगे। इस दौरान गुजरात की सारी सिंचाई परियोजनाएं ठप्प हैं और आगे भी रहेंगी।

कहते हैं कि जवाहर लाल नेहरू ने बड़े बांधों को 'आधुनिक भारत के मंदिर' कहा था। मगर कोई पाठ्यपुस्तक आपको यह नहीं बताएगी कि जल्दी ही उन्होंने यह भी कहा था: "कुछ समय से मैं यह सोचना लगा हूं कि हम 'विशालता के रोग' से ग्रस्त हैं। हम दिखाना चाहते हैं कि हम बड़े बांध बना सकते हैं और बड़े काम कर सकते हैं। भारत में यह एक खतरनाक दृष्टिकोण पनप रहा है। ...हमें यह भी समझना चाहिए कि हम छोटी-छोटी योजनाओं की मदद से अपनी समस्याओं को जल्दी व कार्यक्षम ढंग से सुलझा सकते हैं; खासकर जब छोटी योजना जल्दी पूरी की जा सके और फौरन लाभ मिल सकें। इसके अलावा इन छोटी योजनाओं में जनता का सहयोग भी अधिक मिलता है। अर्थात् छोटी योजनाओं का एक सामाजिक महत्व भी है।" *(स्रोत फीचर्स)*